REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 8 | MAY - 2024

मध्यप्रदेश में प्रचलित भक्ति संगीत की विभिन्न परम्पराएं, सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के परिप्रेक्ष्य में

शिल्पी मिश्रा
शोधार्थी संगीत
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. देवाशीष बनर्जी
विभागाध्यक्ष संगीत
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

मध्यप्रदेश में प्रचलित भक्ति संगीत को अक्षुण्ण बनाये रखने का भागीरथ प्रयास किया गया है। भक्ति संगीत यहाँ की संस्कृति की आत्मा कहीं जाती है जो भक्ति संगीत की साधना स्थली मध्यप्रदेश के जीवन राग का परिचय होता है और भक्ति संगीत के क्षेत्र में विशेष योगदान को रेखांकित करता है। आबादी की रणभेदी से लेकर विकास की सुमधुन तान तक की सुखद यात्रा, मध्यप्रदेश के गौरव एवं इतिहास की यात्रा का साक्षी रहा है। इस भूभाग की मिट्टी, शिलाओं एवं हवाओं में वैभव की सुगंध विद्यमान है। यहाँ के प्रकृति की छटा को देखकर जहाँ शब्द कविता बनकर निकलते हैं वहीं पर स्वर आलाप ने अपने जादू की छटा से हृदयों को मंत्रमुग्ध कर राज्य के भक्ति संगीत का संसार बसाया है। आराधना, साधना एवं प्रार्थना ने संगीत की संजीवनी के रूप में चारों तरफ बिखेरा है। अतीत के झकोरो से वर्तमान तक मध्यप्रदेश अपने इतिहास में भक्ति संगीत के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थाापित करता चला आ रहा है। भक्ति संगीत की अविरल शक्ति से दीप प्रज्ज्वलित करना और मेघों से वर्षा कराना भक्ति संगीत के साधना की विषय है।

मुख्य शब्द – मध्यप्रदेश, भक्ति संगीत, परम्पराएं, धर्म एवं सम्प्रदाय।

प्रस्तावना –

मध्यप्रदेश के संगीतकार सम्राट तानसेन के नाम से कौन परिचित नहीं है। एक बार बादशाह अकबर ने अपने दरबार में तानसेन से अपने संगीत के प्रभाव को दिखाने का हठ किया तो संगीतकार तानसेन ने तन्मय भाव से दीपक राग की साधना की और शनै–शनै स्वर आलाप सिद्ध होते गये तथा देखते ही देखते दरबार में रखे दीप प्रज्वलित हो उठे। सोलहवीं शताब्दी के महान संगीतकार तानसेन का जन्म ग्वालियर के नजदीक बेहट ग्राम्य में हुआ था और इसके गुरु स्वामी हरिदास थे एवं बैजू बावरा उनके गुरू भाई थे। वैसे भी मध्यप्रदेश में लोक संगीत की अनूठी परम्परा रही है, जो परम्परा ग्वालियर घराने से शुरू हुई थी, ग्वालियर प्रान्त के राजा मानसिंह तोमर ध्रुपद गायन के प्रणेता व लोक संगीत के बड़े प्रेमी थे। मध्यप्रदेश में आज भी अखिल भारतीय तानसेन समारोह का तीन दिवसीय आयोजन किये जाते हैं, जो प्रमुख रूप समाधिस्थल ग्वालियर एवं उनके स्थल बेहट ग्राम्य में किया जाता है। तानसेन को संगीत की दुनिया का सम्राट माना जाता है। इन्होंने दरबारी,

मियां मल्हार, तोड़ी जो भी संगीत की तान छेड़ी, वह आज भी मानव धड़कनों में की हुई है, इनकी उपलब्धियाँ एवं सृजन आज भी यश की गाथा चारों दिशाओं में गूंज रहे हैं। सम्राट तानसेन के संगीत की महागंगा, उनके जन्म स्थली बेहट से ग्वालियर होती हुई मध्यप्रदेश की पावन नगरी मैहर को भी धन्य करती है। मैहर की माँ शारदा भवानी का पुण्य तीर्थ प्रख्यात संतूर वादक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को पाकर लोक संगीत का तीर्थ स्थल बन गया। संतूर की खनक से उत्पन्न संगीतो की सुमधुन ध्वनियाँ आज की उनकी यादों को ताजा कर देती है जो विदेशों तक अपने संगीत पताका मैहर बैण्ड के माध्यम से अदा भी बिखेर रही है, उनकी यादों में अलाउददीन खां संगीत अकादमी की स्थापना की गयी है। लोक संगीत ऋषि मुनियों एवं साधकों के हजारों वर्षों की तपस्या एवं साधना का प्रतिशत रहा है। ऐसा कहा जाता है कि जिस मानवीय समाज में कला का स्थान नहीं होता है, वह समाज प्रायद्वीप बन जाता है। जिस मानवीय समाज में कुमार गंधर्व जैसे संगीत प्रेमी का जन्म हुआ, वह क्षेत्र धन्य हो जाता है, कुमार गन्धर्व सात वर्ष की अल्पायु में ही वे बाल गायक के रूप में सुविख्यात हो गये थे। कुमार गन्धर्व ने जहाँ एक ओर मालवी संगीतों को राग दरबारी ढंग से गाकर ये आयाम प्रस्तुत किये है, वहीं दूसरी ओर सूर, तुलसी, कबीर और मीरा के पदों को गाकर उन्हें जन सामान्य तक स्वर सरिता के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इन्होंने मुख्य रूप से राग मालवती, लग्न गंधार सहेली तोड़ी एवं गांधी मल्हार की रचना की और 'अनूप राग विलास' नामक पुस्तक की रचना कर लोक संगीत प्रेमियों को संगीत की एक अनूठी सीख प्रदान की। लोक संगीत जब जन समूह को प्रभावित करने लगता है तब उसका सामाजिक महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में फिल्मी संगीतों को भुलाया नहीं जा सकता। इस क्षेत्र में मध्यप्रदेश के इन्दौर नगर में जन्मी लता मंगेश्कर ने गायन की यात्रा वर्ष 1947 से आरम्भ की, इन्होंने प्रत्येक भाव, भक्ति, धर्म एवं भाषा संगीतों में अपने स्वरों को बिखेरा। ऐसा कहा जाता है कि उनके गले में माँ सरस्वती स्वयं विराजमान रही है। इसलिए वे सम्पूर्ण राष्ट्र की गायिका रही हैं। संगीत उनकी साधन एवं निरन्तर तपस्या का सुफल रहा है। लता जी को संगीत के क्षेत्र में देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न से भी सम्मानित किया गया था। इसके अतिरिक्त भी उन्हें अन्य पुरस्कारों से दादा साहब फालके, पद्मभूषण एवं पद्मविभूषण आदि पुरस्कार प्रमुख हैं। इसलिए मध्यप्रदेश एवं लोक संगीत एक दूसरे के पूरक लगते हैं। लोक संगीत की चर्चा में मध्यप्रदेश का उल्लेख किये बिना कदापि पूरा नहीं हो सकता।

संगीत शब्द को भावात्मक रूप से विश्लेषित करने पर इसमें हमें दो शब्द मिलता है – (1) संग (2) गीत

संग शब्द हिन्दी के साथ शब्द का बोधक है। भावात्मक रूप से संग का भावार्थ हुआ, साथ–साथ। इस तरह गान में सहयोग कराने वाले व्यक्ति का भावात्मक बोध कराता है। संगीत आनंद का अथाह सागर है। संगीत शब्द के भावात्मक विश्लेषण से दूसरा शब्द 'गीत' है। इसमें गति का बोध कराने के लिए काव्य साहित्य तथा गान क्रिया से स्वर समूह दोनों को योजित करने से गीत का बोध होता है अर्थात् गीत–पद+धुन लयात्मक स्वर समूह।

इस तरह गीत शब्द का हिन्दी साहित्य के अनुरूप विवेचना की जाती है। हिन्दी साहित्य तथा संगीत साहित्य में (पठन्त, लड़न्त, भिडन्त, उपज) इत्यादि का मूल स्रोत संगीत साहित्य था। अतः पद, संगीत, छंद इत्यादि का स्रोत संस्कृत भाषा का काव्य शास्त्र का मूल स्रोत माना जाता है। इस तरह संस्कृत साहित्य के व्याकरण पक्ष से आधुनिक लघु सिद्धान्त कौमुदी का तर्क विभाग यह कहता है कि गान क्रिया में पद को जोड़ने से गीत शब्द का भाषात्मक बोध कराया जाता है।

संगीत का उद्भव, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उद्भव एवं विकास के अनुरूप होना स्वाभाविक है। वैदिक सामगान से गंधर्व संगीत का विकास हुआ। धार्मिक अनुष्ठानों में जिस संगीत का प्रयोग हुआ वह सामगान तथा लौकिक समारोहों में जिस संगीत का व्यवहार हुआ वह गंधर्व कहलाया। गंधर्व के अन्तर्गत जाति गायन होता था जिसका विकास लोक संगीत से ही लोकधुनों को परिष्कृत एवं परिमार्जित कर उन्हें शास्त्रीयता प्रदान कर प्रमुख 18 जातियों का विकास हुआ तथा उनका मुख्य लक्ष्य देव परितोष था। प्रारम्भ में इन जातियों का प्रयोग मुख्यतः नाटकों में किया जाता था, ये जातियाँ जब स्वतंत्र रूप से गाई जाने लगी। तब रामायण एवं महाभारत काल में इन्हें मार्ग संज्ञा से अभिहित किया, जो संगीत कामाचार प्रवर्तित था, लोक रुचि पर निर्भर था तथा जिसका शास्त्र पक्ष गौण था, उसे देशी संगीत माना गया। जैसे मार्ग एवं देशी सापेक्ष संज्ञाएं हैं। भारत के नाट्य शास्त्र में जातियों के साथ ग्रामरागों का उल्लेख एवं व्यवहार भी बताया गया है।

मार्गी एवं देशी यह दोनों शब्द परस्पर अभिन्न रूप से जुड़े हैं और उनमें से एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। नाट्य शास्त्र में कहा गया है –

गीतं वाद्य तथा नृत्यत्रयं संगीत मुच्यते।
मानो देशीति तद द्वेधाः तत्र मार्गः स उच्चते।
यो मर्गितों विरज्यमादौः प्रयुक्तो भरतादिभि।
देवस्य पुरतः संभोनिर्यात म्युमुदभप्रदः।
देशेदेशे जनानां यद्याच्याहदयरज्जकम गीतं
च वादनं नृतं तद्देशीय व्यभिहियते।।

अर्थात् गीत वाद्यं एवं नृत्य का समुच्चय संगीत है, जो दो प्रकार का है मार्ग एवं देशी। मार्ग उसे कहते हैं जिसे प्रहमादि ने खोजा है। भारतादि ने शंभु के सामने प्रयुक्त किया और जो नियत रूप से कल्याणप्रद है, जो गीत, नाटक एवं नृत्य देश में लोगों की रुचि के अनुसार प्रयुक्त होकर हृदय रंजक होता है, वह देशी है। संगीत शब्द का व्यक्तिगत अर्थ प्राचीन संस्कृत वांङमय में सम्यक गीतम् के रूप में बताया गया है। उपनिषद् पुराणों में संगीत का लय–ताल वाद्य विशेष के संयम गति से परिमार्जित गीत रूप में माना गया है।

संगीत की उत्पत्ति एवं मत –

संगीत के उत्पत्ति के विषय में प्रमुख रूप से दो मत पाये जाते हैं। इन्हें हम दो विचार धाराएं कह सकते हैं –

(1) भारतीय विचारधारा – भारतीय विचारधारा के अनुसार मनुष्य को प्रत्येक चीज ईश्वर द्वारा अपने उत्कृष्टतम रूप में प्रदान की गयी अर्थात् हर कला की उत्पत्ति का संबंध ईश्वर से जोड़ा गया है। भारतीय विचारधारा के अन्तर्गत अनेक परम्पराएं प्रचलित रही है, जैसे–शैव, वैष्णव, कृष्ण आदि परन्तु प्रत्येक परम्परा में संगीत के उत्पत्ति का संबंध उस अलौकित शक्ति से जोड़ा गया है। चाहे वह ब्रह्मा हो या शिव अथवा विष्णु। भिन्न–भिन्न परम्पराओं के अनुसार संगीत के उत्पत्ति का संबंध शिव, पार्वती, सरस्वती, ब्रह्मा आदि देवी–देवताओं के साथ जोड़ा गया है।

नटराज शिव को नृत्य का देवता कहा गया है। ताण्डव का संबंध शिव से है और लास्य का पार्वती से। शिव जी के क्रोध को शांत करने के लिए पार्वती ने लास्य किया था। देवी सरस्वती को गायन का प्रवर्तिका कहा गया है। संगीत के ग्रंथों में स्वयंभू ब्रह्मा को गांधर्व का आदिम प्रवक्ता कहा गया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार, गान्धर्व के तत्वों को समाहित करने वाला नाट्य वेद स्वयं ब्रह्मा की रचना है। भारतीय विचारधारा के अनुसार संगीत का उद्भव तो अलौकिक शक्ति से हुआ पर बाद में मानव ने बुद्धि तथा प्रकृति प्रेरणाओं से उसका काफी विकास किया, इसके अनुसार उनका आदिम मानव मनु स्वयं ही ज्ञानी था जिसे संगीत कला भी ईश्वर से प्राप्त हुई थी।

प्राकृतिक तत्वों का प्राकृतिक जीवन में होने वाली घटनाओं से भी संगीत की उत्पत्ति का संबंध जोड़ा जाता है। बृहद्देशी में उद्धृत कोहल के श्लोक के अनुसार 7 स्वरों की उत्पत्ति का संबंध कुछ पशु पक्षियों से जोड़ा गया है। संगीत रत्नाकर बृहद्देशी, संगीत मकरंद में सातों स्वरों का संबंध ऋषि, कुल, देवता, जाति, वर्ण, द्वीप, नक्षत्र, राशि, रंग आदि से जोड़ा गया है। विशेष रूप से वर्ण, ऋषि, कुल, देवता से स्वरों का संबंध जोड़ने वाली बात को 18वीं सदी के बाद में ग्रंथकारों ने स्वरों का उक्त वस्तुओं से स्थापित संबंध को निरर्थक कहा है।

(2) पाश्चात्य विचारधारा – प्रत्येक कला की उत्पत्ति के विषय में क्रमिक विकास का सिद्धान्त अधिक मान्य है। शुरू में मनुष्य निरा जंगली, बर्बर व असभ्य था। अभिव्यक्ति के लिए उसके लिए भाषा नहीं था। धीरे–धीरे हर्षोल्लास, उत्सव आदि के अवसर पर भावाभिव्यक्ति के रूप में उसने उछल कूद अथवा चिल्लाना आदि क्रिया करना शुरू की, उन्हीं से धीरे–धीरे क्रम विकास के द्वारा नृत्य व गायन जैसी कलाओं की उत्पत्ति हुई। पाश्चात्य मत के अनुसार हर चीज का विकास पहले आदिम मानवों में देखा जाता है। फिर सभ्य समाज में उसमें परिस्कृत व विकसित रूप का आरोपण किया जाता है। पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार संगीत का उद्भव

ईश्वरी प्रेरणा से मानव ने धीरे–धीरे किया। इनका आदिम मानव निरा जंगली था। उसने बाद में संगीत का विकास किया।

विश्लेषण –

संगीत का इतिहास स्वयं मानव का इतिहास है, जैसे–जैसे मानव का आध्यात्मिक विकास होता गया, संगीत का भी विकास उसी तरह उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। संगीत के उत्पत्ति के विषय में विभिन्न किवदन्तिया भी प्रचलित है।

संगीत का सम्पूर्ण इतिहास प्रागैतिहासिक काल में आज तक के समय को स्थूल रूप से मुख्य तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) प्राचीन काल (आदिकाल से 800 ई. तक)
(2) मध्यकाल (800 ई. से 1800 ई. तक)
(3) आधुनिक काल (1800 ई. से आज तक का समय)

प्राचीन काल – प्राचीन काल को पुनः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(1) वैदिक काल –

इस काल का प्रारम्भ आदि काल से 1000 ई. पूर्व तक माना जाता है। इस काल में हिन्दू धर्म के चारों वेदों की रचना हुई। इसलिए इसे वैदिक काल कहा गया है। सामवेद सम्पूर्ण संगीत युक्त है। उसके भागों का पाठ सदैव संगीत मय होता रहा है। 'स' गायन में केवल तीन स्वर प्रयोग किये जाते हैं जिनका नाम क्रमशः स्वरित, उदात्त और अनुदात्त था। उदात्त का अर्थ ऊँचा और अनुदात्त का अर्थ नीचा स्वर है। किन्तु स्वरित के अर्थ में मतभेद रहा है। कहीं उदात्त से ऊँचा तो कही अनुदात्त से नीचे का स्वर माना जाता है। उदात्त को गन्धार अनुदात्त को रिषम तथा स्वरित को षडज माना गया है। 'नारदीय शिक्षा' और 'बृहतदेशी' में केवल तीन स्वरों का उल्लेख मिलता है।

ऋतु प्रति साख्य ग्रंथ में 4 स्वरों का वर्णन मिलता है। इसके बाद क्रमशः स्वरों में वृद्धि होती गयी। वैदिक काल में ही सात स्वर विकसित हो चुके थे। ''मांडूकि शिक्षा' की यह पंक्ति इसका प्रमाण है – 'सप्त स्वरस्य गीयन्ते सामभिः सामगैबुधैः।' ग्रामों का भी जन्म हो चुका था। इस काल में वाद्यों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे – दुदुम्भी, मृदुम्भी, वानस्पति, कंठ, वीणा, वारण्यम, तूणव, बाकुर आदि। इससे सिद्ध है कि वैदिक काल में ही संगीत का अधिक प्रचार हो चुका था और संगीत–साधना बहुत ऊँची उठ चुकी थी।

(2) संदिग्ध काल –

इस काल की अवधि 100 ईसा पूर्व से एम.ई. तक है। संगीत की दृष्टि से इसे संदिग्ध काल इसलिए कहा गया है कि उस समय का कोई भी ग्रंथ ऐसा नहीं है कि जिससे उस समय के संगीत का थोड़ा बहुत जानकारी मिल सके। केवल उस काल के कुछ उपनिषद मिलते हैं,. जिनमें संगीत के विषय में थोड़ी सी सामग्री प्राप्त होती है। महाभारत में 'सप्त स्वरों' और 'गान्धार ग्राम' का उल्लेख मिलता है। 'ऋक प्रति साख्य' में सर्वप्रथम संगीत शास्त्र का स्वरूप मिलता है। सप्त स्वरों का वर्णन मिलता है। रामायण में भी संगीत और वाद्यों का वर्णन मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि संगीत का प्रचार निरन्तर चलता रहा।

(3) भरत काल –

पहली विशेषता यह है कि इस काल की अवधि एक ईशा से 800 ई. तक है। इस काल की प्रमुख विशेषता यह कि जिस प्रकार आज कल राग–गायन प्रचलित है, उसी प्रकार उस काल में जाति गायन प्रचलित थी। दूसरी विशेषता यह है कि इस काल में 3 ग्राम 22 श्रुतिया, 9 स्वर (7 शुद्ध 2 विकृत), 18 जातियाँ, 21 मूच्छनराएं आदि का वर्णन मिलता है।

ग्रन्थों के नाम –

(1) भरतकृत नाट्यशास्त्र – इस ग्रन्थ की रचना काल के विषय में अनेक मत हैं किन्तु अधिकांशतः विद्वान द्वारा इनका समय पाँचवीं शताब्दी मानी जाती है। यह पुस्तक नाट्य के संबंध में लिखी गई थी, किन्तु इसके 6 अध्यायों में संगीत संबंधी विषयों पर प्रकाश डाला गया। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय संगीत का संबंध नाट्य से बहुत घनिष्ठ हो गया था। नाट्यशास्त्र के 6 अध्यायों में निम्नलिखित सामग्रियाँ मिलती है –

(क) भारत ने केवल मध्यम और षडज ग्राम का उल्लेख किया है। गांधार ग्राम को बिल्कुल छोड़ दिया है।
(ख) षडज ग्राम की 7 और मध्यम ग्राम की 11 जातियाँ अर्थात् कुल 18 जातियाँ मानी गयी है। 18 जातियों को पुनः दो भागों में बाटी गई है – (1) शुद्ध, (2) ''विकृत शुद्ध जातियाँ 7 है।'' इसमें षडज और मध्यम दोनों ग्रामों की शुद्ध और विकृति जातियाँ मिली हुई है।
(ग) जाति के 10 लक्षण माने गये हैं – ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पतव, बहुत्व, षाडवत्व और औडवत्स।
(घ) केवल काकली नि और अन्तर गन्धार विकृत स्वर माने गये हैं।
(ङ) वादी–संवादी, अनुमादी और विवादी का वर्णन किया गया है। संवादी स्वरों में 9 अथवा 13 श्रुतियों की तथा विवादों में दो श्रुतियों की दूरी मानी गयी है।
(च) सा, म और प की 4–4, ग और नि की 2–2 और रे–ध की 3–3 श्रुतियाँ मानी गयी है।

2. दन्तिलाकृत दन्तिलम –

इस ग्रन्थ को भी लगभग पाँचवी शताब्दी के आसपास का माना जाता है। इसकी निम्न विशेषताएँ हैं –
(क) भरत कृत नाट्यशास्त्र के विपरीत इसमें गान्धार ग्राम का उल्लेख है।
(ख) इस ग्रंथ में विवादी स्वरों की दूरी केवल दो श्रुति मानी गई है, किन्तु संवादी स्वरों की दूरी भरत के ही समान है।
(ग) इसमें भरत की 18 जातियाँ मानी गयी है।

नारद लिखित नादीय शिक्षा इस ग्रन्थ की रचना काल के विषय में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। अधिकांश विद्वान इसे दसवीं एवं बारहवीं शताब्दी के बीच का मानते हैं। इसमें सामवेदीय स्वरों और 7 ग्राम रागों का विशेष उल्लेख है। ग्रन्थों के अतिरिक्त शिलालेख, तमिल ग्रन्थ पारिपाडल, बौद्ध नाटक सिला पदिदगारम आदि इस काल के संगीत के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

मध्यकाल – इस काल की अवधि 8वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक मानी जाती है। इस काल को दो मुख्य उप विभागों में बांटा गया है।

1. पूर्व मध्यकाल – यह काल 8वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक माना जाता है। शारंग देवभृत संगीत रत्नाकर और पं. जयदेव कृत गीत गोविन्द से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार आजकल राग–गायन प्रचलित है उस समय प्रबंध–गायन प्रचलित था, इसलिये उस काल को प्रबन्ध काल भी कहते हैं। 9वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक भारत में संगीत की अच्छी उन्नति हुई।

उस समय के रियासतों में संगीत को संरक्षण मिला जिससे संगीत का प्रचार और विकास हुआ। यह काल संगीत का स्वर्ण युग माना जाता है। 11वीं शताब्दी से मुसलमानों का आक्रमण प्रारम्भ हुआ और लगभग 12वीं शताब्दी तक वे भारत के शासक हो गये। उनकी सभ्यता, संस्कृति और संगीत का प्रभाव भारतीय संगीत पर पड़ा। अतः उत्तर भारतीय संगीत, जिस पर उनका विशेष प्रभाव था, दक्षिणी संगीत से धीरे–धीरे पृथक होता गया। संगीत के इस नवीन रूप का विकास अकबर के राज्यकाल में विशेष रूप से हुआ। इस काल की निम्नलिखित सामग्रियाँ प्राप्त होती है।

(1) संगीत मकरंद – इस ग्रन्थ के रचयिता नारद हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि नारद नाम के कई व्यक्ति हुए क्योंकि विभिन्न समय में नारद कृत विभिन्न पुस्तकें मिलती हैं, जैसे नारदीय शिक्षा, संगीत मकरंद, नारदीय संहिता आदि। संगीत मकरंद के समय के विशेष में अनेक मत हैं। अधिकांश विद्वान इसे नयीं शताब्दी को मानते हैं।

रागों की स्त्री–पुरुष और नपुंसक वर्गों में सर्वप्रथम विभाजन इसी पुस्तक में प्राप्त होता है। अतः इसे राग–रागिनी पद्धति का आधार ग्रन्थ कहा जा सकता है।

संगीत मकरंद में केवल यह विभाजन ही नहीं वरन् विभाजन भी मिलते हैं, जैसे–कम्पनी के आधार, समय के आधार पर विभाजन इत्यादि।

(2) गीत गोविन्द – इसकी रचना 12वीं शताब्दी में जयदेव द्वारा हुई। जयदेव केवल कवि ही नहीं गायक भी थे। इसमें स्वरलिपि रहित संस्कृत में लिखे गये प्रबन्धों और गीतों का संग्रह है। अतः केवल शब्दों से उस समय के संगीत का ज्ञान नहीं हो पाता।

(3) संगीत रत्नाकर – इस ग्रन्थ की रचना 13वीं शताब्दी में शारंगदेव द्वारा हुई। यह ग्रन्थ केवल उत्तरी संगीत का ही नहीं, वरन् दक्षिण भारतीय संगीत का भी आधार ग्रन्थ माना जाता है। इससे कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ग्रन्थकार ने उत्तरी व दक्षिणी संगीत को एक में समन्वित करने की चेष्टा की। इसमें निम्न विशेषतायें मिलती हैं –

(क) इसमें शारंगदेव ने सम्वादी स्वर का अंतर 8 और 12 श्रुतियों का माना है जबकि उनके पूर्व भरत, दत्तिल और मतंग ने 9 अथवा 13 श्रुतियों का अंतर माना है।

(ख) इसमें गंधार ग्राम का विस्तृत वर्णन मिलता है।

(ग) इसमें नारद के स्त्री–पुरुष और नपुंसक राग–विभाजन के साथ–साथ अन्य सिद्धान्त भी स्वीकार किये गये हैं।

(घ) शुद्ध और विकृत कुल 12 स्वर माने गये हैं, किन्तु भरत के समान 18 जातियाँ मानी गई है। जाति के 13 लक्षण–गृह, अंश, न्याय, अपन्यास, सन्यास, विन्यास, मंद्र, तार, अल्पत्व, बहुत्व, षाडंवत्क औडवत्व और अंतरमार्ग बताये गये हैं। इनके पूर्व भरत ने जाति के दस लक्षण माने थे। पं. शारंगदेव ने भरत के दस लक्षणों में तीन और जोड़ दिये। उनके नाम हैं – सन्यास, विन्यास और अंतरमार्ग।

(च) ग्रन्थकार के मतानुसार जातियों से ग्राम राग और ग्राम राम से राग, उपराग उत्पन्न माने गये। ग्राम राग 30 माने गये।

संगीत रत्नाकर के विषय में बहुत बड़ी समस्या यह है कि संस्कृत की सूत्र शैली में लिखे जाने के कारण उसे ठीक से समझाना कठिन है।

उत्तर मध्यकाल – इस काल का प्रारम्भ 13वीं शताब्दी के बाद से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में फारस और उत्तर भारतीय संगीत का मिश्रित रूप भली–भाँति विकसित हुआ, अतः इसे विकास–काल भी कहा जाने लगा। मुसलमानों का प्रभाव विशेषकर उत्तर भारत में रहा, इसलिये उत्तर भारतीय संगीत पर फारस के संगीत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अधिकांश मुसलमान राजाओं को संगीत से प्रेम था। उन लोगों ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया, जिससे शास्त्रीय संगीत की उन्नति हुई।

अलाउद्दीन (1296–1316) – उसके शासन काल में अमीर खुसरो नामक संगीत विद्वान हुआ। कहा जाता है कि उन्होंने वाद्यों में तबला और सितार, रागों में साजगिरि, सरपर्दा, जिल्फ आदि, गीत के प्रकारों में छोटा ख्याल और तराना तथा तालों में झूमरा, सूल, आड़ा चारताल आदि की रचना की। उनकी गायन प्रतियोगिता दक्षिण के संगीतज्ञ गोपाल नायक से हुई और उन्होंने छल–कपट से उसे हरा दिया। इसके बाद गोपाल को अपने साथ दिल्ली ले गये और उनके साथ संगीत में बहुत काम किया।

राग तरंगिणी – इस काल की सर्वप्रथम पुस्तक लोचन कृत 'राग–तरंगिणी' है। इसकी रचना काल 15वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इसके अनुसार शुद्ध थाट काफी है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सम्पूर्ण रागों को कुल 12 थाटों अथवा मेलों में विभाजित किया गया है। आधुनिक थाट राग वर्गीकरण का बीजारोपण 'राग–तरंगिणी' द्वारा हुआ, ऐसा लोगों का विश्वास है।

कल्लिनाथ – वह एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ था। राग–रागिनी वर्गीकरण का एक मत इन्हीं के नाम पर आधारित है। उनके समय में भक्ति आन्दोलन चल पड़ा जिससे भजन कीर्तन द्वारा संगीत प्रचार हुआ।

अकबर (1556–1605) – उसके शासनकाल में संगीत की बहुत उन्नति हुई। उस समय संगीत का बहुत अच्छा प्रचार था। अकबर स्वयं संगीत का बड़ा प्रेमी था। आइने अकबरी के अनुसार उसके दरबार में छत्तीस संगीतज्ञ थे, जैसे – नायक, बैजू, तालतरंग, गोपाल, तानसेन आदि। इनमें तानसेन मुख्य थे – तानसेन का

असली नाम तन्ना मिश्र था। तानसेन की वंश और शिष्य परम्परा सैनी घराना कहलाई। तानसेन ने अनेक रागों की रचना की, जैसे – दरबारी कांहडा, मियां की सारंग, मियां मल्हार आदि। आज भी तानसेन के बनायी हुई बहुत से ध्रुपद मिलते हैं। अकबर के समकालीन ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर से ग्वालियर घराना प्रारम्भ हुआ। तुलसीदास, सूरदास, मारीबाई आदि भक्त कवियों और कवियित्रियों द्वारा जनता में संगीत का प्रचार बढ़ा। उसी समय दक्षिण के संगीतज्ञ पुन्डरीक बिट्ठल ने चार ग्रन्थें की रचना की। उनके नाम हैं – राग माला, राज मंजरी, सद्राग चन्द्रोदय और नर्तन निर्णय।

जहांगीर (1605–1627) – उसके दरबार में भी कई संगीतज्ञ थे, जैसे – बिलास खां, छत्तर खां, मक्खू आदि। 1620 में दक्षिण के विद्वान पं. सोमनाथ ने 'राग–विबोध' पुस्तक लिखा। इसमें भी उत्तरी और दक्षिणी संगीत को एक में समन्वित करने का प्रयत्न किया गया। 1625 में पं. दामोदर मिश्र द्वारा 'संगीत–दर्पण' ग्रन्थ लिखा गया।

शाहजहां (1627–1657) – उसके दरबारी संगीतज्ञों के नाम इस प्रकार हैं – दिरंग खां और ताल खां, जिन्हें शाहजहां ने 'गुण–समुद्र' की उपाधि दी, जगन्नाथ जिन्हें 'कविराज' की उपाधि दी और तानसेन के दामाद विलास खां और तानसेन के ही पुत्र लाल खां।

संगीत पारिजात – 1650 ई. में पं. अहोबल द्वारा लिखा गया और दीनानाथ ने फारसी में इसका अनुवाद किया।

(क) पं. अहोबल ने 7 शुद्ध स्वरों के स्थान पर 22 विकृत स्वरों के नाम दिये हैं, किन्तु राग अध्याय में कई स्वर छोड़ दिये हैं व केवल 12 स्वर प्रयोग किये हैं। उन्होंने शुद्ध स्वरों के लिए एक से अधिक नाम भी प्रयोग किये हैं।

(ख) इस ग्रन्थ में प्रथम बार वीणा के तार पर बारहों स्वरों की स्थापना का प्रयास किया गया है।

(ग) 'संगीत परिजात' का शुद्ध सप्तक उत्तर भारत के काफी और दक्षिण भारत के खरहरप्रिया थाट के समान था।

लगभग इसी समय में हृदयनारायण देव द्वारा 'हृदय कौतुक' और 'हृदय–प्रकाश' ग्रन्थ लिखे गये।

औरंगजेब (1657–1670) – संगीत का कट्टर विरोधी था। उसने संगीत को जड़ से उखाड़ फेंकने का भरसक प्रयत्न किया। संगीतज्ञों के वाद्य जला दिये गये और उन्हें संगीत छोड़ देने के लिए बाध्य किया गया। जिन लोगों ने सम्राट के भय से संगीत को त्याग दिया, उन्हें राज्य की ओर से पेंशन दी गई। उस समय के संगीतज्ञों ने विरोध स्वरूप संगीत का जनाजा निकाला। औरंगजेब ने जब यह सुना तो उसने कहा कि संगीत की इतनी गहराई में गाड़ दो कि उसकी आवाज फिर कभी न सुनाई दे। फिर भी औरंगजेब के क्रूर अत्याचार इसे पूर्णतया नहीं रोक सके। इस काल में भी संगीत के कुछ ग्रन्थों की रचना हुई जो इस प्रकार है –

चतुर्दन्डिप्रकाशिका – यह ग्रन्थ 1660 ई. में दक्षिण के संगीतज्ञ व्येंकटमुखी द्वारा लिखा गया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि उस समय के स्वर सप्तक से अधिक से अधिक 72 थाटों की रचना हो सकती है तथा एक थाट से कुल 484 राग उत्पन्न हो सकते हैं। यद्यपि ग्रन्थकार ने एक सप्तक में 12 स्वर माने हैं, किन्तु एक स्वर के कई नाम भी स्वीकार किये हैं।

भावभट्ट – तीन ग्रन्थ लिखे – अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप और विलास तथा अनूपांकुश। प्रथम पुस्तक में ग्रन्थकार ने समस्त रोगों की 20 थाटों अथवा मेलों में बांटा है।

मोहम्मदशाह रंगीले (1719–1748) – संगीत का बड़ा प्रेमी था। उसके दरबार में सदारंग और अदारंग दो प्रमुख गायक थे, जिनके ख्यात आज भी प्रचुरता से प्रचलित हैं। लगभग इसी समय जौनपुर के शोरी मियां ने टप्पे का आविष्कार और प्रचार किया। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुसलमानों का राज्य धीरे–धीरे समाप्त होने लगा और अंग्रेजों को प्रभुत्व बढ़ने लगा। केवल रियासतों में संगीत की साधना चलती रही। श्रीनिवास कृति 'राग तत्वविबोध' इसी समय की है जिसमें उन्होंने अहोबल की तरह वीणा के तार पर शुद्ध और विकृत स्वरों का स्थान बताया है। इस काल में त्रिवट, गजल, तराना आदि का प्रचार हुआ।

आधुनिक काल – 1800 ई. के बाद से आज तक का समय आधुनिक काल के अन्तर्गत आता है। इसे पुनः दो भागों में बांटा जा सकता है, 1800 से 1900 तक और 1900 से आज तक का समय। प्रथम को पूर्वार्द्ध और दूसरे को उत्तरार्द्ध आधुनिक काल कहते हैं।

भारतवर्ष में फ्रांसीसी, डच, पुर्तगाल, अंग्रेज आदि आये किन्तु अंग्रेजों ने ही धीरे–धीरे लगभग सम्पूर्ण भारत पर आधिपत्य जमा लिया। उनका मुख्य ध्येय भारत पर शासन करना था, इसलिये उनसे संगीत का

आश्रय मिलना अथवा उसके प्रचार की आशा करना व्यर्थ था। उस समय संगीत–दीपक कुछ रियासतों में हत्याओं के झकोरे सहते हुए किसी प्रकार जल रहा था। कुछ मुख्य शहरों में खानदानी संगीतज्ञ संगीत की साधना में लगे थे, जैसे – इलाहाबाद, वाराणसी, रामपुर, लखनऊ, कोलकत्ता, मुम्बई, दिल्ली, कोल्हापुर आदि। उन संगीतज्ञों की भी बुरी दशा थी। वे केवल अपने संबंधितों को और उस पर भी बड़ी मुश्किल से सिखाते थे। अन्य किसी बाहरी का उनसे सीखना लगभग असंभव था। धीरे–धीरे संगीत समाज की कुलटा स्त्रियों के हाथ जा लगा। समाज ऐसे व्यक्तियों से घृणा करने लगा। संगीत आमोद–प्रमोद का साधन हो गया, यहाँ तक कि सभ्य समाज में संगीत का नाम लेना पाप समझा जाने लगा। ठीक ऐसे ही समय में, जहाँ समाज के अधिकांश लोग संगीत से घृणा करते थे, संगीत के कुछ पोषकों का भी प्रादुर्भाव हुआ।

(क) सन् 1813 में पटना में मोहम्मद रजा ने 'नगमाते आसफ़ी' नामक पुस्तक लिखा जिसमें उन्होंने तत्कालीन राग–रागिनी पद्धति के चार मतों–शिव, कल्लिनाथ, भरत और हनुमान मत का खंडन किया और अपना एक नवीन मत 6 राग 36 रागिनियों का बनाया। उनकी पुस्तक की दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें दूसरी ओर काफी थाट के स्थान पर बिलावल को शुद्ध थाट माना गया।

(ख) जयपुर के राजा प्रताप सिंह देव ने 'संगीत–सार' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने भी शुद्ध थाट बिलावल माना।

(ग) कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत राग कल्पद्रुम' में उस समय के प्रचलित ध्रुपद, ख्याल आदि गीतों को संग्रह किया, किन्तु उनकी स्वरलिपि नहीं दिया।

बंगाल के सर सौरेन्द्र मोहन टैगोर ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्युजिक' पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने राग–रागिनी पद्धति स्वीकार की है।

1900 के बाद, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही संगीत का प्रचार और प्रसार होने लगा। इसका मुख्य श्रेय स्व. पं. विष्णू दिगंबर पुलस्कर और विष्णु नारायण भातखण्डे को प्राप्त होता है। जिस प्रकार संगीत के दो मुख्य अंग हैं–क्रियात्मक और शास्त्र, उसी प्रकार पंडित विष्णु दिगंबर पुलस्कर तथा भातखण्डे एक ही उद्देश्य हेतु दो पथ प्रदर्शक थे।

इधर आकाशवाणी और चलचित्र द्वारा भी संगीत का काफी प्रचार हुआ। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् संगीत के प्रचार और प्रसार में आकाशवाणी का विशेष हाथ रहा। आकाशवाणी के स्तर को उच्च करने के लिए उसमें भाग लेने वाले कलाकारों की ध्वनि–परीक्षा सरकार द्वारा नियुक्त संगीतज्ञों की मंडली लेती है और कलाकारों की श्रेणी तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करती है। आकाशवाणी और वृहद संगीत–सम्मेलन आयोजित करती है। सम्मेलन में संगीत संबंधी विवाद ग्रस्त विषयों पर भी विचार–विमर्श होता है। सन् 1953 में दिल्ली में संगीत नाटक अकादमी स्थापित की गई और उच्च संगीत शिक्षा के लिये योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी गई। प्रति शनिवार को साढ़े नौ बजे रात्रि से ग्यारह बजे रात्रि तक शास्त्रीय संगीत को विभिन्न कार्यक्रम आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। प्रतिवर्ष गणतंत्र भारत के राष्ट्रपति 4 प्रौढ़ संगीतज्ञों का कुछ धन–राशि, श्रीफल और काश्मीरी शाल देकर सम्मानित करते हैं। आकाशवाणी द्वारा केवल शास्त्रीय संगीत की ही नहीं वरन् लोक संगीत भजन के रिकार्ड तैयार किये गये। दूसरी ओर चलचित्र संगीत ने शास्त्रीय संगीत का प्रचार तो नहीं किया,. किन्तु भारत के प्रत्येक व्यक्ति के कानों में संगीत का थोड़ा अंश पहुंचा कर सुरीला अवश्य बना दिया है।

जनता की ओर से कई स्थानों पर संगीत सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। उल्लेखनीय नाम है – प्रयाग, लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, ग्वालियर, बम्बई, कोलकत्ता आदि। इस समय देशभर में अनेक संगीत संस्थायें हैं जो संगीत की शिक्षा दे रहीं हैं। जैसे प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद, भातखंडे संगीत विद्यापीठ लखनऊ, गांधी संगीत विद्यालय कानपुर, गांधर्व महाविद्यालय, पूना, स्कूल ऑफ इण्डियन म्युजिक बम्बई, स्कूल ऑफ इण्डियन म्युजिक बड़ौदा, म्युजिक कॉलेज कलकत्ता, शंकर संगीत महाविद्यालय ग्वालियर, व्यास संगीत विद्यालय बम्बई, माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर आदि। भारतवर्ष के प्रत्येक हाईस्कूल, इंटर मीडिएट् तथा उच्च परीक्षाओं में संगीत एक वैकलिपक विषय हो गया है। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद, पटना, बनारस, कानपुर, नागपुर, काश्मीर, पंजाब, रोहतक, पटियाला, खैरागढ़, आगरा, बड़ौदा आदि विश्वविद्यालयों में एम.ए. के पाठ्यक्रम में संगीत का समावेश हो गया है। एम.ए. के पश्चात् बहुत से विद्यार्थी संगीत में शोध कार्य कर रहे हैं और

विश्वविद्यालय उन्हें डायरेक्ट्रेट की उपाधि दे रही हैं। संगीत की बहुत सी पुस्तकें शास्त्र और क्रियात्मक दोनों पर लिखी गई।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः मध्यप्रदेश में विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के अनुसार भक्ति संगीत की विभिन्न परंपराएं हैं, जो सभी धार्मिक समुदायों के अनुभव और आदर्शों को अभिव्यक्त करती हैं। हिन्दू धर्म में भजन गायन की विशेष परंपरा है। ये भजन भगवान की प्रशंसा और भक्ति के भावों को अभिव्यक्त करते हैं। कीर्तन भी हिन्दू धर्म में प्रसिद्ध है, जिसमें भक्तों द्वारा भगवान की महिमा गाई जाती है। इस्लामी समुदायों में, नज्म (कविता) और मदह (स्तुति) का गायन किया जाता है, जो अल्लाह और उसके पैगम्बर की महिमा को गाते हैं। जैन समुदायों में, स्रोत्रों का गायन किया जाता है, जो तीर्थंकरों की प्रशंसा और उनकी गुणगान को व्यक्त करते हैं। सिख समुदायों में, गुरुबाणी के शब्द कीर्तन का गायन किया जाता है, जो गुरुओं की शिक्षाओं और धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। ईसाई समुदायों में, धार्मिक हिम्नों का गायन किया जाता है, जो ईसा मसीह की महिमा और उसके संदेश को प्रस्तुत करते हैं। इन सभी परंपराओं में, भक्ति संगीत धार्मिक संदेशों को साझा करने का माध्यम होता है और समुदाय के सदस्यों की आत्मिक उन्नति और शांति के लिए एक महत्वपूर्ण रूप से योगदान करता है।

संदर्भ –

1. विनोबा – भागवत धर्म सार, (मीमांसा सहित), म.प्र. ग्रंथ, अकादमी, भोपाल, संस्करण 1988
2. उमेश जोशी – भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद, आगरा मानसरोबर, प्रकाशन, फिरोजाबाद, संस्करण 1989
3. राम प्यारे अग्निहोत्री – रीवा राज्य का इतिहास, मध्यप्रदेश शासन सहित परिषद भोपाल, संस्करण 1972
4. डॉ. शरश चन्द्र श्रीधर परांजये – संगीत बोध, मध्य प्रदेश हिन्दी, अकादमी, संस्करण 1972
5. डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, रीवा, संस्करण 2006–07
6. डॉ. शन्नो खुराना – ख्याल गायकी में, विविध घराने, सिद्धार्थ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 1995
7. डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा (म.प्र.), संस्करण 2012
8. वीर सिंह देव – वीरभानूदय, नवीन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 1990
9. पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे – उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, गोरखपुर पब्लिकेशन, गोरखपुर, संस्करण 1993
10. डॉ. सुनील कुमार चौबे – हमारा आधुनिक संगीत, उ.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1988
11. डॉ. सुशील कुमार चौबे – संगीत घराने की चर्चा, उ.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1977
12. विलायत हुसैन खाँ, – संगीतज्ञों के संस्मरण, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1988
13. कन्हैयालाल अग्रवाल – विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, नवीन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 1995
14. भगवतशरण शर्मा – भारतीय संगीत का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीयूटर्स, रीवा, संस्करण 1980
15. भगवत शरण शर्मा – भारतीय इतिहास में संगीत, 1988, गायत्री पब्लिकेशन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, रीवा, संस्करण 1988
16. डॉ. केशवचन्द्र जैन – भारत का इतिहास, म. प्र. हिन्दी, ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1992
17. वासुदेव उपाध्याय – प्राचीन भारतीय, अभिलेखों का अध्ययन, राजस्थान हिन्दी, ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1861
18. विमला गुप्ता – आधुनिक हिन्दी प्रगति, संगीत तत्व, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, संस्करण 1987
19. उमा मिश्र – काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बंध, दिल्ली पुस्तक सदन, संस्करण 1962
20. अकादमी सिंह – तुलसी की काव्य कला उनकी रचनाओं में, आगरा सरस्वती पुस्तक सदन, संस्करण 1962
21. ओ.एस. श्रीवास्तव – मध्यप्रदेश का आर्थिक विकास, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1987

22. अहोबल – संगीत पारिजाल, हा थरस, संगीत, कार्यालय, संस्करण 1956
23. गोविंदराव राजुस्कर – संगीत शास्त्र पराग, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1984
24. पन्नालाल मदन – संगीत शास्त्र विज्ञान, जालंधर पंजाब किताब घर, संस्करण 1987
25. इन्द्राणी चक्रवर्ती – स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, वाराणसी, चौखन्ना ओरियण्टा–किया, वाराणसी, संस्करण 1979,
26. लालमणि मिश्र – भारतीय संगीत वाद्य, दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, संस्करण 1973
27. विमल चौधरी – कान्तराय राग व्याकरण, दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, संस्करण 1981
28. रामकृष्ण व्यास – राग प्रभाकर, इलाहाबाद, सरला प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1974,